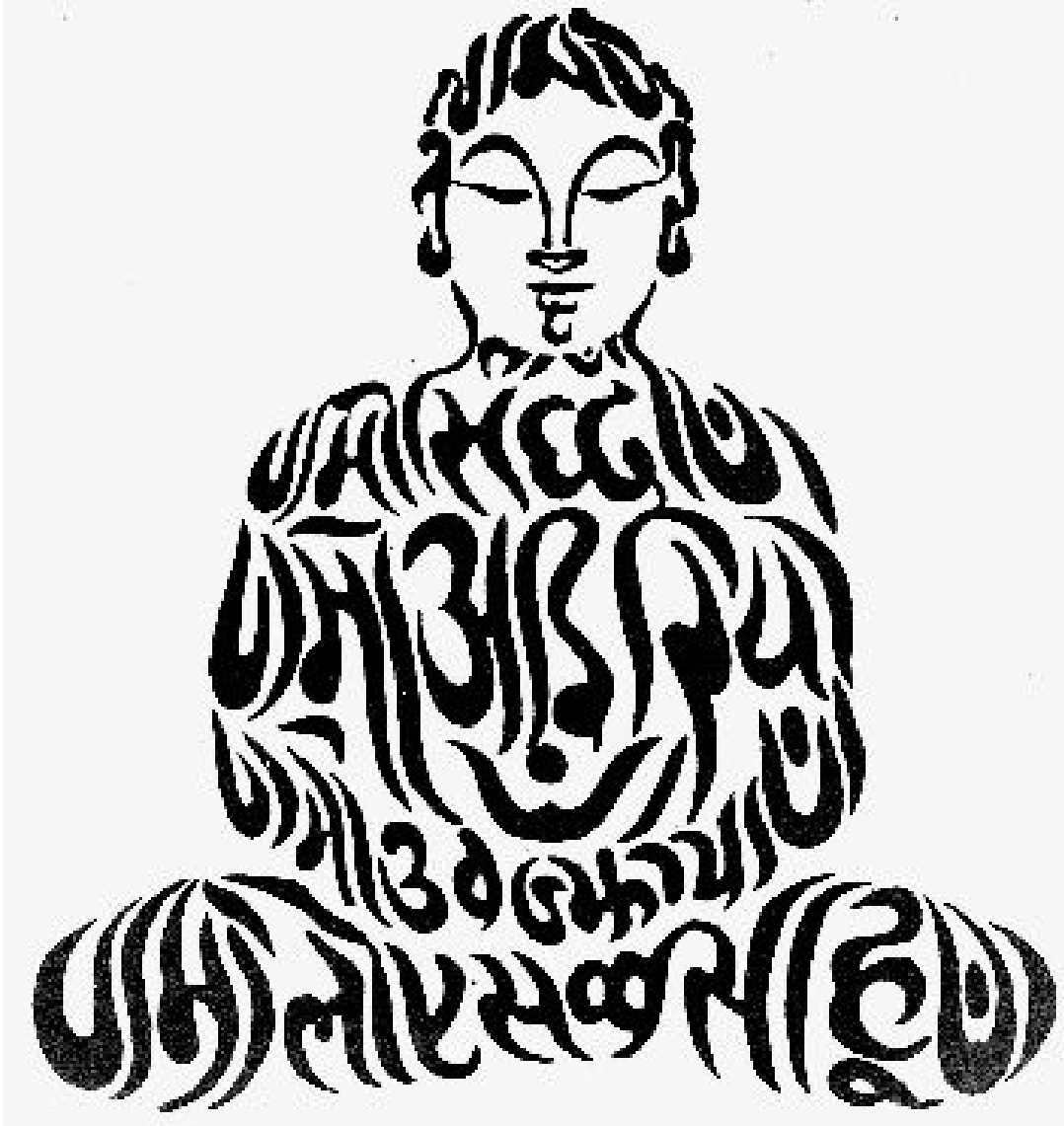


पंचास्तिकाय



- आचार्य कुन्दकुन्द

!! नमः श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

॥ श्रीपरमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरुवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः
प्रतिबिधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री पंचास्तिकाय नामधेयं,
अस्य मूलाग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः
प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य कुन्दकुन्दाचार्य विरचितं

॥ श्रोतारः सावधानतया शृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

मंगलाचरण

पाहुड

कुल गाथा

दर्शन पाहुड

35

सूत्र पाहुड

[illegible]

दर्शन पाहुड

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥1॥

सौ इन्द्रों से पूजित, तीनों लोकों को हितकर, मधुर और विशद वचनों युक्त, अनन्त गुणों से सम्पन्न, जितभवी (संसार को जीतनेवाले) जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार हो ।

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं
एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि ॥2॥

श्रमण के मुख से निकले हुए अर्थमय, चतुर्गति का निवारण करनेवाले, निर्वाण सहित (निर्वाण को कारणभूत) इस समय को सिरसा प्रणाम कर मैं इसे कहूँगा, तुम सुनो! ।

समवाओ पंचण्हं समउ त्ति जिणुत्तमेहि पण्णत्तं
सो चेव हवदि लोगो ततो अमओ अलोगो खं ॥3॥

पाँच अस्तिकायों का समवायरूप समय जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा गया है, वही लोक है तथा उससे आगे असीम अलोक नामक आकाश है ।

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगासं
अत्थित्तम्हि य णियदा अणण्णमइया अणुमहंता ॥4॥

जीव, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म और आकाश अस्तित्व में नियत, अनन्यमय और अणुमहान है ।

जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविएहिं

ते ह॑न्ति अ॒त्थिका॒या णि॒प्पण्णं जेहिं तइ॒लोक॑क्कं ॥5॥

जिनका विविध गुणों और पर्यायों के साथ अस्तिस्वभाव है, वे अस्तिकाय हैं । उनसे तीन लोक निष्पन्न हैं ।

**ते चेव अ॒त्थिका॒या तिक्कालि॒यभाव॑परिणदा णि॒च्चा
गच्छ॑न्ति द॒विय॑भावं प॒रियट्ठ॑णलिंगसंजु॒त्ता ॥6॥**

त्रिकालवर्ती भावों से परिणमित, नित्य वे ही अस्तिकाय, परिवर्तन लिंग (काल) सहित द्रव्य भाव को प्राप्त होते हैं ।

**अण्णोण्णं प॒विसं॑ता दें॒ता ओगा॑समण्णमण्णस्स
मे॒लंता वि य णि॒च्चं स॒गं स॒भावं ण वि॒जह॑न्ति ॥7॥**

वे परस्पर एक दूसरे में प्रवेश करते हैं, एक दूसरे को अवकाश देते हैं, परस्पर में मिलते भी हैं; तथापि सदैव अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं ।

**सत्ता स॒व्वप॑यत्था स॒विस्स॑रू॒वा अण॑ंतपज्जा॒या
भंगु॑प्पादधु॒वत्ता स॒प्पडि॑वक्खा ह॒वदि॑ एक्का ॥8॥**

सत्ता सर्व पदार्थों में स्थित, सविश्वरूप, अनन्त पर्यायमय, भंग-उत्पाद-ध्रौव्यरूप, सप्रतिपक्ष और एक है ।

**द॒विय॑दि गच्छ॑दि ताइं ताइं स॒ब्भाव॑पज्जयाइं जं
द॒वियं तं भ॑ण्णंति हि अण्ण॑णभूदं तु सत्ता॒दो ॥9॥**

उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं; जो कि सत्ता से अनन्यभूत है ।

**द्वं सल्लखणयं उत्पादव्ययधुवत्तसंजुतं
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू ॥10॥**

जो सत लक्षणवाला है, उत्पाद-व्यय-धौव्य संयुक्त है अथवा गुण-पर्यायों का आश्रय है, उसे सर्वज्ञ भगवान् द्रव्य कहते हैं ।

**उप्पत्ती व विणासो द्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो
विगमुप्पादधुवत्तं करेति तस्सेव पज्जाया ॥11॥**

द्रव्य का उत्पाद-विनाश नहीं है, सद्भाव है। विनाश, उत्पाद और ध्रुवता को उसकी ही पर्यायें करती हैं ।

**पज्जयविजुदं द्वं द्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेति ॥12॥**

पर्याय रहित द्रव्य और द्रव्य रहित पर्यायें नहीं होती हैं । दोनों का अनन्यभूत भाव / अभिन्नपना श्रमण प्ररूपित करते हैं ।

**द्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं द्वं विणा ण संभवदि
अव्वदिरित्तो भावो द्वगुणाणं हवदि तम्हा ॥13॥**

द्रव्य के बिना गुण नहीं हैं, गुणों के बिना द्रव्य संभव नहीं है; इसलिये द्रव्य और गुणों के अव्यतिरिक्त / अभिन्न भाव है ।

**सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तवं पुणो य तत्तिदयं
द्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि ॥14॥**

द्रव्य वास्तव में आदेश / कथन के वश से स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, उभय / स्यात् अस्ति-नास्ति, स्यात् अवक्तव्य तथा पुनः उन तीनों रूप अर्थात् स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य और स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य -- इसप्रकार सात भंगरूप हैं ।

**भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो
गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति ॥15॥**

भाव का नाश नहीं है, अभाव का उत्पाद नहीं है, भाव गुण पर्यायों में उत्पाद व्यय करते हैं ।

**भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा ॥16॥**

जीवादि भाव हैं । चेतना और उपयोग जीव के गुण हैं तथा देव, मनुष्य, नारकी, तिर्यच आदि अनेक जीव की पर्यायें हैं ।

**मणुसत्तणेण णट्ठो देही देवो व होदि इदरो वा
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ॥17॥**

मनुष्यत्व से नष्ट हुआ देही (शरीरधारी जीव) देव या अन्य रूप में उत्पन्न होता है; (परन्तु) इन दोनों (दशाओं) में जीव भाव नष्ट नहीं हुआ है और अन्य उत्पन्न नहीं हुआ है ।

**सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसो ति पज्जाओ ॥18॥**

वही उत्पन्न होता है, वही मरण को प्राप्त होता है; तथापि न वह नष्ट होता है और न उत्पन्न होता है; देव-मनुष्य आदि पर्यायें ही उत्पन्न होती हैं, नष्ट होती हैं ।

**एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो ति गदिणामो ॥19॥**

इसप्रकार जीव के सत का विनाश और असत का उत्पाद नहीं है; जीवों के देव, मनुष्य आदि (सम्बन्धी) गति-नाम आदि (योग्यता, कर्म) उतने ही समय के होने से (देव का जन्म, मनुष्य का मरण इत्यादि) कहा जाता है ।

**णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो ॥20॥**

ज्ञानावरणादि भाव जीव के साथ भली-भाँति अनुबद्ध हैं । उनका अभाव करके यह अभूतपूर्व सिद्ध होता है ।

**एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च
गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो ॥21॥**

इसप्रकार गुण-पर्यायों सहित जीव संसरण करता हुआ भाव, अभाव, भावाभाव और अभावभाव को करता है ।

**जीवा पोग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा
अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्स ॥22॥**

जीव, पुद्गलकाय, आकाश और शेष दो (धर्म, अधर्म) अस्तिकाय अकृत, अस्तित्वमय और वास्तव में लोक के कारणभूत हैं ।

**सब्भावसभावाणं जीवाणं तह य पोग्गलाणं च
परियट्ठणसंभूदो कालो णियमेण पण्णत्तो ॥23॥**

सत्ता स्वभाव वाले जीवों और पुद्गलों के परिवर्तन से सिद्ध होने वाले काल का (सर्वज्ञ द्वारा) नियम से कथन किया गया है ।

**समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती
मासोडुअयणसंवच्छरो ति कालो परायत्तो ॥25॥**

समय, निमिष, काष्ठा, कला, नाली घड़ी, से होने वाले दिन, रात, मास, ऋतु, अयन, वर्ष ये पराश्रित काल हैं ।

**णत्थि चिरं वा खिप्पं मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता
पोग्गलदव्वेण विणा तम्हा कालो पडुच्चभवो ॥26॥**

चिर अथवा क्षिप्र / शीघ्र मात्रा (परिमाण) के बिना नहीं होता है, और वह मात्रा वास्तव में पुद्गल द्रव्य के बिना नहीं है; इसलिये काल प्रतीत्यभव है (पर का आश्रय लेकर व्यक्त होता है) ।

**जीवो ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पहु कत्ता
भोक्ता य देहमेत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो ॥27॥**

(संसार स्थित आत्मा) जीव, चेतयिता, उपयोगलक्षित, प्रभु, कर्ता, भोक्ता, देह प्रमाण, अमूर्त और कर्मसंयुक्त है ।

**कम्ममलविप्पमुक्को उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता
सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं ॥28॥**

कर्ममल से विप्रमुक्त, ऊर्ध्व-लोक के अन्त को प्राप्त वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी आत्मा अनन्त अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करते हैं ।

**जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य
पप्पोदि सुहमणंतं अव्वाबाधं सगममुत्तं ॥29॥**

वह चेतयिता स्वयं सर्वज्ञ और सर्व-लोक-दर्शी होता हुआ, अपने अतीन्द्रिय, अव्याबाध, अमूर्त सुख को प्राप्त करता है ।

**पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं
सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ॥30॥**

जो चार प्राणों से जीता है, जिएगा और पहले जीता था, वह जीव है; तथा प्राण बल, इन्द्रिय, आयु और श्वासोच्छ्वास हैं ।

**अगुरुलहुगा अणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे
देसेहिं असंखादा सियलोगं सव्वमावण्णा ॥31॥
केचिच्च अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोग जुदा
विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा ॥32॥**

अगुरुलघुक अनंत हैं, उन अनन्तों द्वारा सभी परिणमित हैं, वे प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यात हैं । उनमें से कुछ तो कथंचित् सम्पूर्ण लोक को प्राप्त हैं और कुछ अप्राप्त हैं । अनेक जीव मिथ्यादर्शन, कषाय से सहित संसारी हैं तथा अनेक उनसे रहित सिद्ध हैं ।

**जह पउमरायरयणं खित्तं खीरे पभासयदि खीरं
तह देही देहत्थो सदेहमेत्तं पभासयदि ॥33॥**

जैसे दूध में पड़ा हुआ पद्मराग रत्न दूध को प्रकाशित करता है; उसी प्रकार देह में स्थित देही / संसारी जीव स्वदेहमात्र प्रकाशित होता है ।

**सव्वत्थ अत्थि जीवो ण य एक्को एक्क काय एक्कट्ठो
अज्झवसाणविसिट्ठो चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं ॥34॥**

जीव सर्वत्र (सभी क्रमवर्ती शरीरों में) है तथा एक शरीर में (क्षीर-नीरवत्) एक रूप में रहता है; तथापि उसके साथ एकमेक नहीं है। अध्यवसान विशिष्ट वर्तता हुआ, रजमल (कर्ममल) द्वारा मलिन होने से वह भ्रमण करता है ।

**जेसिं जीवसहाओ णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा ॥35॥**

जिनके विभाव-प्राण धारण करने-रूप जीव-स्वभाव नहीं है, और उसका सर्वथा अभाव भी नहीं है; वे शरीर से भिन्न, वचनगोचर अतीत (वचनातीत) सिद्ध हैं ।

**ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि ॥36॥**

वे सिद्ध किसी से भी उत्पन्न नहीं हुए हैं, अतः कार्य नहीं हैं; तथा किसी को भी उत्पन्न नहीं करते, अतः वे कारण भी नहीं हैं ।

**सस्सदमध उच्छेदं भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च
विण्णाणमविण्णाणं ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे ॥37॥**

(मोक्ष में जीव का) सद्भाव न होने पर शाश्वत, नाशवान, भव्य (होने योग्य), अभव्य (न होने योग्य), शून्य, अशून्य, विज्ञान और अविज्ञान (जीव में) घटित नहीं होते हैं ।

**कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमध एक्को
चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण ॥38॥**

तीन प्रकार के चेतक-भाव द्वारा एक जीवराशि कर्मों के फल को, एक जीवराशि कार्य को और एक जीवराशि ज्ञान को चेतती है / वेदती है ।

**सर्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विदंति ते जीवा ॥39॥**

सभी स्थावर जीवसमूह कर्मफल का, त्रस कर्मसहित कर्मफल का वेदन करते हैं तथा प्राणित्व का अतिक्रमण कर गए वे जीव (सर्वज्ञ भगवान) ज्ञान का वेदन करते हैं ।

**उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो
जीवस्स सर्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि ॥40॥**

वास्तव में जीव के सर्वकाल, अनन्यरूप से रहनेवाला ज्ञान और दर्शन से संयुक्त दो प्रकार का उपयोग जानो ।

**आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि
कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते ॥41॥**

आभिनिबोधिक (मतिज्ञान), श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान - ये ज्ञान के पाँच भेद हैं; तथा कुमति, कुश्रुत, विभंग - ये तीन भी ज्ञान के साथ संयुक्त हैं ।

**दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं
अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं ॥42॥**

दर्शन भी चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और अनिधन / अविनाशी अनंत विषय वाले केवलदर्शन के भेद से चार प्रकार का कहा गया है ।

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि हंति णेगाणि

तम्हा दु विस्सरूवं भणियं दवियत्ति णाणीहिं ॥43॥

ज्ञानी को ज्ञान से पृथक् नहीं किया जा सकता है । ज्ञान अनेक हैं, इसलिये ज्ञानियों ने द्रव्य को विश्वरूप / अनेक रूप कहा है ।

**जदि हवदि दव्वमण्णं गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे
दव्वाणंतियमहवा दव्वाभावं पकुव्वंति ॥44॥**

यदि द्रव्य गुण से (सर्वथा) अन्य हो तथा गुण, द्रव्य से अन्य हों तो (या तो) द्रव्य की अनन्तता होगी या द्रव्य का अभाव हो जाएगा ।

**अविभत्तमणण्णत्तं दव्वगुणाणं विभत्तमण्णत्तं
णेच्छन्ति णिच्चयण्हू तव्विवरीदं हि वा तेसिं ॥45॥**

द्रव्य और गुणों के अविभक्तरूप अनन्यता है । निश्चय के ज्ञाता उनके (द्रव्य-गुणों के) विभक्तरूप अनन्यता या उससे विपरीत विभक्तरूप अनन्यता स्वीकार नहीं करते हैं ।

**ववदेसा संठाणा संखा विसया य होंति ते बहुगा
ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जन्ते ॥46॥**

वे व्यपदेश, संस्थान, संख्या और विषय अनेक हैं; तथापि वे उनके (द्रव्य-गुणों के) अनन्यत्व-अन्यत्व में भी विद्यमान रहते हैं ।

**णाणं धणं च कुव्वदि धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं
भण्णंति तह पुधत्तं एयत्तं चावि तच्चण्हू ॥47॥**

जिस प्रकार ज्ञान और धन (जीव को) ज्ञानी और धनी - दो प्रकार से करते हैं; उसीप्रकार तत्त्वज्ञ पृथक्त्व और एकत्व कहते हैं ।

**णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदो दु अण्णमण्णस्स
दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥48॥**

यदि ज्ञानी और ज्ञान सदा परस्पर अर्थान्तरभूत (पूर्ण भिन्न) हों तो दोनों को अचेतनता का प्रसंग आएगा; जो सम्यक् प्रकार से जिनों को सम्मत नहीं है ।

**ण हि सो समवायादो अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी
अण्णाणीति य वयणं एगत्तपसाधगं होदि ॥49॥**

ज्ञान से अर्थान्तरभूत वह समवाय से भी ज्ञानी नहीं हो सकता । 'अज्ञानी' ऐसा वचन ही उनके एकत्व को सिद्ध करता है ।

**समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य
तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धि ति णिदिट्ठा ॥50॥**

समवर्तित्व, समवाय, अपृथग्भूतत्व और अयुतसिद्धत्व - ये एकार्थवाची हैं; इसलिए द्रव्य-गुणों के अयुतसिद्धि है - ऐसा कहा है ।

**वण्णरसगंधफासा परमाणुपरूविदा विसेसेहिं
दव्वादो य अणण्णा अण्णत्तपगासगा होंति ॥51॥
दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वन्ति हि णो सभावादो ॥52॥**

जैसे परमाणु में प्ररूपित द्रव्य से अनन्य वर्ण, रस, गंध, स्पर्श; विशेषों द्वारा अन्यत्व के प्रकाशक होते हैं; उसीप्रकार जीव में निबद्ध अनन्यभूत दर्शन, ज्ञान; व्यपदेश से पृथक्त्व करते हैं, स्वभाव से नहीं ।

**जीवा अणाइणिहणा संता णंता य जीवभावादो
सब्भावदो अणंता पंचग्गुणप्पहाणा य ॥53॥**

जीव जीवभाव की अपेक्षा अनादि, अनन्त, सांत और अनंत हैं । सद्भाव की अपेक्षा अनन्त और पाँच मुख्य गुणों की प्रधानता युक्त हैं ।

**एवं सदो विणासो असदो जीवस्स हवदि उप्पादो
इदि जिणवरेहिं भणिद अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं ॥54॥**

इसप्रकार जीव के सत का विनाश और असत का उत्पाद होता है; ऐसा परस्पर विरुद्ध होने पर भी जिनवरों ने अविरुद्ध कहा है ।

**णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा पयडी
कुव्वंति सदो णासं असदो भावस्स उप्पादं ॥55॥**

नारक, तिर्यच, मनुष्य, देव - इन नामों से संयुक्त (नामकर्म की) प्रकृतियाँ सत्भाव का नाश और असत्भाव का उत्पाद करती हैं ।

**उदयेण उवसमेण य खयेण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु वित्थिण्णा ॥56॥**

उदय, उपशम, क्षय, इन दोनों के मिश्र / क्षयोपशम और परिणाम से सहित वे जीव के गुण अनेक प्रकारों में विस्तृत हैं ।

**कम्मं वेदयमाणो जीवो भावं करेदि जारिसयं
सो तस्स तेण कत्ता हवदि ति य सासणे पढ्ढिदं ॥57॥**

कर्म का वेदन करता हुआ जीव जैसा भाव करता है, वह उस रूप से उसका कर्ता है - ऐसा शासन में कहा है ।

**कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं ॥58॥**

कर्म के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम बिना जीव के (तत्सम्बन्धी भाव) नहीं होते हैं; अतः वे भाव कर्म-कृत हैं ।

**भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता
ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं ॥59॥**

यदि भाव कर्मकृत हों, तो आत्मा कर्म का कर्ता होना चाहिए; परन्तु वह कैसे हो सकता है? क्योंकि आत्मा अपने भाव को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं करता है ।

**भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं ॥60॥**

(रागादि) भाव कर्मनिमित्तक हैं, कर्म (रागादि) भावनिमित्तक हैं; परन्तु वास्तव में उनके (परस्पर) कर्तापना नहीं है; तथा वे कर्ता के बिना भी नहीं होते हैं ।

**कुव्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेयव्वं ॥61॥**

अपने भाव को करता हुआ आत्मा वास्तव में अपने भाव का ही कर्ता है, पुद्गल कर्मों का नहीं- ऐसा जिनवचन जानना चाहिए ।

**कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण ॥62॥**

कर्म भी अपने स्वभाव से सम्यक् रूप में स्वयं को करता है; उसी प्रकार जीव भी कर्मस्वभाव (रागादि) भाव से सम्यक् रूप में स्वयं को करता है ।

**कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं
किध तस्स फलं भुंजदि अप्पा कम्मं च देदि फलं ॥63॥**

यदि कर्म, कर्म को करता है और वह आत्मा, आत्मा को करता है तो आत्मा उसका फल क्यों भोगता है? और कर्म उसे फल क्यों देता है?

**ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकार्येहिं सव्वदो लोगो
सुहुमेहिं बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविधेहिं ॥64॥**

लोक सर्व प्रदेशों में विविध प्रकार के अनन्तानंत सूक्ष्म-बादर पुद्गलकार्यों द्वारा अवगाहित होकर गाढ़ भरा हुआ है ।

**अत्ता कुणदि सहावं तत्थ गदा पोग्गला सहावेहिं
गच्छन्ति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा ॥65॥**

आत्मा अपने (मोह-राग-द्वेषादि) भाव को करता है; (तब) अन्योन्य अवगाहरूप से प्रविष्ट वहाँ स्थित पुद्गल, अपने भावों से कर्मभाव को प्राप्त होते हैं ।

**जह पोग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ती
अकदा परेहिं दिट्ठा तह कम्माणं वियाणीहि ॥66॥**

जैसे पुद्गलद्रव्यों सम्बन्धी अनेक प्रकार की स्कन्धरचना पर से अकृत (दूसरे से किए बिना) दिखाई देती है; उसी प्रकार कर्मों की बहुप्रकारता पर से अकृत जानना चाहिए ।

जीवा पोग्गलकाया अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा

काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं दिति भुंजंति ॥67॥

जीव और पुद्गलकाय (विशिष्ट प्रकार से) अन्योन्य अवगाह के ग्रहण द्वारा (परस्पर) प्रतिबद्ध हैं। काल से पृथक् होने पर (उदयावस्था के समय) वे (पुद्गल) सुख-दुःख देते हैं (और जीव उन्हें) भोगते हैं ।

तम्हा कम्मं कत्ता भावेण हि संजुदोध जीवस्स भोक्ता दु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफलं ॥68॥

इसलिए जीव के भाव से संयुक्त कर्म, कर्ता है तथा चेतकभाव के कारण कर्मफल का भोक्ता तो (मात्र) जीव है ।

एवं कत्ता भोक्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥69॥

इसप्रकार अपने कर्मों से कर्ता-भोक्ता होता हुआ, मोह से आच्छादित आत्मा पार (सान्त) और अपार (अनन्त) संसार में परिभ्रमण करता है ।

उवसंतखीणमोहो मग्गं जिणभासिदेण समुवगदो णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुरं वजदि धीरो ॥70॥

जिनवचन द्वारा मार्ग को प्राप्तकर, उपशान्त-क्षीणमोह होता हुआ, ज्ञानानुमार्गचारी धीर (पुरुष) निर्वाणपुर को प्राप्त होता है ।

एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणो हवदि चदुचंकमणो भणिदो पंचग्गगुणप्पहाणो य ॥71॥ छक्कापक्कमजुत्तो उवउत्तो सत्तभंगसब्भावो

अट्ठासओ णवट्ठो जीवो दसट्ठाणगो भणिदो ॥72॥

वह महात्मा एक ही है, दो भेदवाला है, तीनलक्षणमय है, चतुर्विध भ्रमणवाला और पाँच मुख्य गुणों से प्रधान कहा गया है। वह उपयोग स्वभावी जीव छह अपक्रम युक्त, सात भंगों से सद्भाव वाला है, आठ का आश्रयभूत, नौ पदार्थरूप और दशस्थानगत कहा गया है।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति ॥73॥

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश बंधों से सर्वतः मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करते हैं; शेष जीव (भवान्तर को जाते समय) विदिशाओं को छोड़कर गति करते हैं।

खंधा य खंधदेसा खंधपदेसा य होंति परमाणू इदि ते चदुव्वियप्पा पोग्गलकाया मुणेदव्वा ॥74॥

स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश और परमाणु - ये चार भेद वाले पुद्गलकाय हैं - ऐसा जानना चाहिए।

खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसो ति अद्धद्धं च पदेसो परमाणू चेव अविभागी ॥75॥

सकलसमस्त (पुद्गल पिण्ड) स्कन्ध है, उसके आधे को देश कहते हैं, आधे का आधा प्रदेश है और परमाणु ही अविभागी है।

बादरसुहुमगदाणं खंधाणं पोग्गलो ति ववहारो ते होंति छप्पयारा तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं ॥76॥

बादर और सूक्ष्मरूप से परिणत स्कन्धों में 'पुद्गल' ऐसा व्यवहार है। वे छह प्रकार के हैं, जिनसे तीन लोक निष्पन्न हैं ।

**सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू
सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागी मुत्तिभवो ॥77॥**

सभी स्कन्धों का जो अंतिम भाग है, उसे परमाणु जानो। वह शाश्वत, अशब्द, एक, अविभागी और मूर्तिभव (मूर्तरूप से उत्पन्न होने वाला) जानना चाहिए ।

**आदेसमेत्तमुत्तो धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु
सो णेओ परमाणू परिणामगुणो सयमसद्दो ॥78॥**

जो आदेश मात्र से मूर्त है, चार धातुओं का कारण है, परिणाम गुण वाला और स्वयं अशब्द है, उसे परमाणु जानो ।

**सद्दो खंधप्पभवो खंधो परमाणुसंगसंघादो
पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादिगो णियदो ॥79॥**

शब्द स्कन्ध-जन्य हैं । स्कन्ध, परमाणुओं के समूह के संघात / मिलाप से बनता है । उन स्कन्धों के परस्पर स्पर्शित होने / टकराने पर शब्द उत्पन्न होते हैं; इस प्रकार वे नियम से उत्पन्न होने योग्य हैं ।

**णिच्चो णाणवगासो ण सावगासो पदेसदो भेत्ता
खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता कालसंखाणं ॥80॥**

प्रदेश की अपेक्षा परमाणु नित्य है, न वह अनवकाश है और न सावकाश है, स्कन्धों का भेत्ता (भेदन करने वाला) तथा कर्ता है, और काल तथा संख्या का प्रविभाग करनेवाला है

एयरसवण्णगंधं दो फासं सद्दकारणमसद्दं

खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि ॥81॥

जो एक रस, एक वर्ण, एक गंध, दो स्पर्श वाला है, शब्द का कारण है, अशब्द है, स्कन्धों के अन्दर है, उसे परमाणु द्रव्य जानो ।

उवभोज्जमिंदिएहिं य इन्द्रियकाया मणो य कम्माणि जं हवदि मुत्तमण्णं तं सव्वं पोग्गलं जाणे ॥82॥

इन्द्रियों द्वारा उपभोग्य विषय, इन्द्रियाँ, शरीर, मन, कर्म और अन्य जो कुछ मूर्त है, वह सब पुद्गल जानो ।

धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं लोगागाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादियपदेसं ॥83॥

धर्मास्तिकाय अरस, अवर्ण, अगन्ध, अशब्द, अस्पर्श स्वभावी है; लोकव्यापक है, अखण्ड, विशाल और असंख्यातप्रदेशी है ।

अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥84॥

वह उन अनन्त अगुरुलघुकों द्वारा नित्य परिणमित है, गतिक्रिया-युक्तों को कारणभूत और स्वयं अकार्य है ।

उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहकरं हवदि लोए तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणीहि ॥85॥

जैसे लोक में जल मछलियों के गमन में अनुग्रह करता है; उसीप्रकार धर्मद्रव्य जीव-पुद्गलों के गमन में अनुग्रह करता है ऐसा जानो ।

**जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमकखं
ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव ॥86॥**

जैसे धर्म द्रव्य है, उसीप्रकार अधर्म नामक द्रव्य भी जानो; परन्तु वह स्थिति-क्रिया-युक्त को पृथ्वी के समान कारणभूत है ।

**जादो अलोगलोगो जेसिं सब्भावदो य गमणठिदी
दो वि य मया विभत्ता अविभत्ता लोयमेत्ता य ॥87॥**

जिनके सद्भाव से लोक-अलोक का विभाग है, (जीव-पुद्गलों की) गति-स्थिति है, वे दोनों विभक्त और अविभक्तस्वरूप तथा लोकप्रमाण माने गए हैं ।

**ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स
हवदि गदि स्स प्पसरो जीवाणं पोग्गलाणं च ॥88॥**

धर्मास्तिकाय गमन नहीं करता है, अन्य द्रव्य को गमन नहीं कराता है; वह जीव और पुद्गलों की गति का प्रसर (उदासीन निमित्त) होता है ।

**विज्जदि जेसिं गमणं ठाणं पुण तेसिमेव संभवदि
ते सगपरिणामेहिं दु गमणं ठाणं च कुव्वंति ॥89॥**

जिनके गमन होता है, उनके ही स्थिति सम्भव है; वे (गति-स्थितिमान पदार्थ) अपने परिणामों से ही गति और स्थिति करते हैं ।

**सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पोग्गलाणं च
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आगासं ॥90॥**

लोक में जीवों, पुद्गलों और उसीप्रकार शेष सभी द्रव्यों को जो सम्पूर्ण अवकाश देता है, वह आकाश है ।

**जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदोणण्णा
तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं ॥91॥**

जीव, पुद्गलकाय, धर्म और अधर्म लोक से अनन्य है; उस (लोक) से अनन्य और अन्य, अन्तरहित आकाश है ।

**आगासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि
उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठन्ति किध तत्थ
॥92॥**

यदि आकाश, गति-स्थिति के कारणसहित अवकाश (स्थान) देता है तो ऊर्ध्वगति में प्रधान सिद्ध वहाँ (लोकाकाश में) ही कैसे (क्यों) ठहरते हैं? (उनका गमन उससे आगे क्यों नहीं होता है?) ।

**जम्हा उवरिट्ठाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं
तम्हा गमणट्ठाणं आयासे जाण णत्थि ति ॥93॥**

जिस कारण जिनवरों ने सिद्धों की लोक के ऊपर स्थिति कही है, उस कारण आकाश में गति-स्थिति (हेतुता) नहीं है ऐसा जानो ।

**जदि हवदि गमणहेदू आगासं ठाणकारणं तेसिं
पसजदि अलोगहाणी लोगस्स य अंतपरिवड्ढी ॥94॥**

यदि आकाश जीव-पुद्गलों के गमन और स्थिति का हेतु हो तो अलोक की हानि और लोक के अन्त की परिवृद्धि (सब ओर से वृद्धि) का प्रसंग आएगा ।

**तम्हा धम्माधम्मा गमणट्ठिदिकारणाणि णागासं
इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं ॥95॥**

इसलिए गति-स्थिति के कारण धर्म-अधर्म हैं, आकाश नहीं है; ऐसा लोकस्वभाव के श्रोताओं से जिनवरों ने कहा है ।

**धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा
पुधगुवलद्धविसेसा करेंति एगत्तमण्णत्तं ॥96॥**

धर्म, अधर्म, आकाश (लोकाकाश) अपृथग्भूत, समान परिमाणवाले और पृथक् उपलब्धि विशेषवान हैं; इसलिए एकत्व और अन्यत्व को करते हैं ।

**आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा
मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥97॥**

आकाश, काल, जीव, धर्म और अधर्म मूर्तरहित (अमूर्त) हैं; पुद्गलद्रव्य मूर्त है; उनमें जीव वास्तव में चेतन है ।

**जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा
पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु ॥98॥**

बाह्य करण सहित जीव और पुद्गल सक्रिय हैं; शेष द्रव्य सक्रिय नहीं हैं। जीव पुद्गल-करणवाले हैं और वास्तव में स्कन्ध काल-करणवाले हैं ।

**जे खलु इन्दियगेज्झा विसया जीवेहिं होन्ति ते मुत्ता
सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि ॥99॥**

जीवों द्वारा जो इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य विषय हैं, वे वास्तव में मूर्त हैं, शेष अमूर्त हैं; चित इन दोनों को ग्रहण करता है (जानता है) ।

**कालो परिणामभवो परिणामो द्रव्यकालसंभूदो
दोण्हं एस सहावो कालो खणभंगुरो णियदो ॥100॥**

काल, परिणाम से उत्पन्न होता है; परिणाम, द्रव्य-काल से उत्पन्न होता है, यह दोनों का स्वभाव है; काल क्षणभंगुर तथा नित्य है ।

**कालो ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥101॥**

‘काल’ ऐसा नाम सद्भाव का प्ररूपक है, अतः नित्य है। दूसरा काल उत्पन्नध्वंसी है; तथापि (परम्परा-अपेक्षा) दीर्घान्तरस्थायी (दीर्घकाल तक रहनेवाला) भी कहा जाता है ।

**एदे कालागासा धम्माधम्मा य पोग्गला जीवा
लब्भंति द्रव्यसण्णं कालस्स दु णत्थि कायत्तं ॥102॥**

ये काल, आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल और जीव ‘द्रव्य’ संज्ञा को प्राप्त करते हैं; परन्तु काल के कायत्व नहीं है ।

**एवं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता
जो मुयदि रागदोसे सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं ॥103॥**

इस प्रकार प्रवचन के सारभूत ‘पंचास्तिकाय संग्रह’ को विशेषरूप से जानकर जो राग-द्वेष को छोड़ता है, वह दुःखों से परिमुक्त होता है ।

मुणिऊण एतदट्ठं तदणुगमणुज्जदो णिहदमोहो

पसमियरागद्दोसो हवदि हदपरापरो जीवो ॥104॥

जीव इसके अर्थ को जानकर, उसके अनुसरण का उद्यम करता हुआ, मोह से रहित हो, राग-द्वेष को प्रशमित करके पूर्वापर बंध से रहित होता है ।

अभिवंदिरुण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं तेसिं पयत्थभंगं मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि ॥105॥

अपुनर्भव (मोक्ष) के कारणभूत श्री महावीर भगवान को शिर झुकाकर नमस्कार करके, उनके (छह द्रव्यों के) पदार्थ भंग को और मोक्ष के मार्ग को कहूँगा ।

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लब्धबुद्धीणं ॥106॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान से सहित, रागद्वेष से परिहीन चारित्र लब्धबुद्धि भव्यों को मोक्ष का मार्ग है ।

सम्मत्तं सद्दहणं भावाणं तेसिमधिगमो णाणं चारित्तं समभावो विसयेसु विरूढमग्गाणं ॥107॥

भावों का (नव पदार्थों का) श्रद्धान सम्यग्दर्शन है; उनका अधिगम ज्ञान है; विरुद्ध-मार्गियों का विषयों में समभाव चारित्र है ।

जीवाजीवा भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं संवरणिज्जरबंधो मोक्खो य हवन्ति ते अट्ठा ॥108॥

जीव और अजीव (मूल) भाव हैं; उन दोनों के पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष - ये (नव) पदार्थ होते हैं ।

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा ॥109॥

चेतनात्मक और उपयोग लक्षणवाले जीव दो प्रकार के हैं - संसारस्थ और सिद्ध । देह में प्रवीचार सहित संसारस्थ हैं तथा देह में प्रवीचार रहित सिद्ध हैं ।

पुढ्वी य उदगमगणी वाउवणप्फदिजीवसंसिदा काया दैंति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तेसिं ॥110॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति जीव से संश्रित अनेक प्रकार के वे शरीर, वास्तव में उन्हें (उन जीवों को) मोह से बहुल स्पर्श देते हैं ।

एदे जीवणिकाया पंचविहा पुढविकाइयादीया मणपरिणामविरहिदा जीवा एगैंदिया भणिया ॥112॥

इन पृथ्वीकायिक आदि पाँच प्रकार के जीवनिकायों को मन परिणाम से विरहित एकेन्द्रिय जीव कहा है ।

अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया जारिसया तारिसया जीवा एगैंदिया णेया ॥113॥

अण्डे में प्रवर्धमान (बढ़ते हुए), गर्भस्थ और मूर्छा को प्राप्त मनुष्य जैसे हैं; उसी प्रकार एकेन्द्रिय जीव जानना चाहिए ।

संबुक्कमादुवाहा संखा सिप्पी अपादगा य किमी जाणंति रसं फासं जे ते बेइंदिया जीवा ॥114॥

जो रस और स्पर्श को जाननेवाले शंबूक, मातृवाह, शंख, सीप और पैर रहित कृमी आदि हैं, वे द्वीन्द्रिय जीव हैं ।

**जूगागुंभीमक्कणपिपीलिया विच्छियादिया कीडा
जाणंति रसं फासं गंधं तेइंदिया जीवा ॥115॥**

यूका (जूँ), कुंभी, मत्कुण (खटमल), पिपीलिका (चींटी), बिच्छू आदि कीट (जन्तु) त्रीन्द्रिय जीव स्पर्श, रस और गंध को जानते हैं ।

**उद्दंमसयमक्खियमधुकरभमरा पतंगमादीया
रूवं रसं च गंधं फासं पुण ते विजाणंति ॥116॥**

डॉस, मच्छर, मक्खी, मधुमक्खी, भँवरा, पतंगे आदि वे (चतुरिन्द्रिय जीव) रूप, रस, गंध, स्पर्श को जानते हैं ।

**सुरणरणारयतिरिया वण्णरसप्फासगंधसद्दण्हू
जलचरथलचरखचरा बलिया पंचेंदिया जीवा ॥117॥**

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द को जाननेवाले देव, मनुष्य, नारकी तथा जलचर, थलचर, नभचर रूप तिर्यच बलवान पंचेन्द्रिय जीव हैं ।

**देवा चउण्णिकाया मणुया पुण कम्मभोगभूमीया
तिरिया बहुप्पयारा णेरइया पुढविभेयगदा ॥118॥**

देव, चार निकायवाले हैं; मनुष्य कर्मभूमिज और भोगभूमिज हैं; तिर्यच, अनेक प्रकार के हैं और नारकी पृथ्वी-भेद-गत हैं ।

खीणे पुव्वणिबद्धे गदिणामे आउसे च ते वि खलु

पापुण्णंति य अण्णं गदिमाउस्सं सलेस्सवसा ॥119॥

पूर्वबद्ध गति नामकर्म और आयुकर्म क्षीण होने पर वे ही जीव अपनी लेश्या के वश से वास्तव में अन्य गति और अन्य आयु को प्राप्त होते हैं ।

**एदे जीवणिकाया देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा
देहविहूणा सिद्धा भव्वा संसारिणो अभव्वा य ॥120॥**

ये जीवनिकाय देह प्रवीचार के आश्रित (देह का भोग-उपयोग करनेवाले) कहे गए हैं । देह से रहित सिद्ध हैं । संसारी भव्य और अभव्य दो भेदवाले हैं ।

**ण हि इंदियाणि जीवा काया पुण छप्पयार पण्णत्ता
जं हवदि तेसु णाणं जीवो ति य तं परूवेंति ॥121॥**

इन्द्रियाँ जीव नहीं हैं, कहे गए छह प्रकार के काय भी जीव नहीं हैं । उनमें जो ज्ञान है वह जीव है, ऐसा (सर्वज्ञ भगवान) प्ररूपित करते हैं ।

**जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं ॥122॥**

जीव सब जानता और देखता है, सुख को चाहता है, दुःख से डरता है, हित-अहित को करता है और उनके फल को भोगता है ।

**एवमभिगम्म जीवं अण्णेहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं
अभिगच्छदु अज्जीवं णाणंतरिदेहिं लिंगेहिं ॥123॥**

इस प्रकार अन्य भी अनेक पर्यायों द्वारा जीव को जानकर, ज्ञान से भिन्न लिंगों द्वारा अजीव को जानो ।

**आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेषु णत्थि जीवगुणा
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा ॥124॥**

आकाश, काल, पुद्गल, धर्म और अधर्म में जीव के गुण नहीं हैं । उनके अचेतनता कही गई है तथा जीव के चेतनता है ।

**सुहदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं
जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा विंति अज्जीवं ॥125॥**

जिसके सदैव सुख-दुःख का ज्ञान, हित के लिए उद्यम / प्रयास, अहित से भय नहीं है श्रमण उसे अजीव कहते हैं ।

**संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू ॥126॥
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं
जाण अलिंगगहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥127॥**

संस्थान, संघात, वर्ण, रस, स्पर्श, गंध, शब्द इत्यादि अनेक गुण और पर्यायें पुद्गल द्रव्य से उत्पन्न होती हैं ।

जीव को अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त, चेतनागुण सहित, अशब्द, अलिंगग्रहण और अनिर्दिष्ट संस्थानवाला जानो ।

**जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥128॥**

**गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा ॥129॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्भि**

इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥130॥

वास्तव में जो संसारस्थ जीव है, उससे परिणाम होता है; परिणाम से कर्म और कर्म के कारण गतियों में गमन होता है ।

गतिप्राप्त को देह होती है, देह से इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं, उनसे विषयों का ग्रहण होता है, विषयग्रहण से राग या द्वेष होता है ।

ऐसे भाव, संसार-चक्र में जीव के अनादि-अनन्त या अनादि-सान्त होते रहते हैं - ऐसा जिनवरों ने कहा है ।

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि

विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो ॥131॥

जिसके भाव में मोह, राग, द्वेष या चित्त की प्रसन्नता विद्यमान है; उसके शुभ या अशुभ परिणाम होते हैं ।

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं ति हवदि जीवस्स दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्मत्तणं पत्तो ॥132॥

जीव के शुभ परिणाम पुण्य और अशुभ परिणाम पाप हैं । उन दोनों के द्वारा पुद्गलमात्र भाव, कर्मत्व को प्राप्त होते हैं ।

जम्हा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥133॥

क्योंकि कर्म का फल जो विषय हैं वे नियम से स्पर्शनादि इन्द्रियों द्वारा सुख-दुःख रूप में जीव भोगता है, इसलिए कर्म मूर्त हैं ।

मुत्तो फासदि मुत्तं मुत्तो मुत्तेण बन्धमणुहवदि जीवो मुत्तिविरहिदो गाहदि ते तेहिं उग्गहदि ॥134॥

मूर्त, मूर्त को स्पर्श करता है; मूर्त, मूर्त के साथ बंध का अनुभव करता है (बँधता है); मूर्ति-विरहित जीव उन्हें अवगाहन देता है और उनके द्वारा अवगाहित होता है ।

**रागो जस्स पसत्थो अणुकंपासंसिदो य परिणामो
चित्तम्हि णत्थि कलुसं पुण्णं जीवस्स आसवदि ॥135॥**

जिस जीव के प्रशस्त राग है, अनुकम्पा से युक्त परिणाम है, चित्त में कलुषता नहीं है, उसे पुण्य का आस्रव होता है ।

**अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा
अणुगमणं पि गुरुणं पसत्थरागो ति वुच्चंति ॥136॥**

अरहन्त, सिद्ध, साधुओं के प्रति भक्ति, धर्म में यथार्थतया चेष्टा और गुरुओं का भी अनुगमन प्रशस्त राग है - ऐसा (सर्वज्ञ भगवान्) कहते हैं ।

**तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ॥137॥**

तृषातुर, क्षुधातुर या दुखी को देखकर जो दुखित मनवाला उनके प्रति कृपापूर्वक प्रवर्तन करता है, उसके यह अनुकम्पा है ।

**कोधो व जदा माणो माया लोहो व चित्तमासेज्ज
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो ति य तं बुधा वेंति ॥138॥**

जब चित्त का आश्रय पाकर क्रोध, मान, माया, लोभ जीव को क्षुब्ध करते हैं, तब उसे ज्ञानी कलुषता कहते हैं ।

**चरिया पमादबहुला कालुस्सं लोलदा य विसयेसु
परपरितावपवादो पावस्स य आसवं कुणदि ॥139॥**

प्रमाद की बहुलतायुक्त चर्या, कलुषता और विषयों में लोलुपता तथा पर को परिताप देना और पर का अपवाद करना पाप का आस्रव करता है ।

**सण्णाओ य तिलेस्सा इंदियवसदा य अत्तरुद्दाणि
णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति ॥140॥**

(चार) संज्ञायें, तीन लेश्यायें, इन्द्रियों की अधीनता, आर्त और रौद्र ध्यान, दुष्प्रयुक्त ज्ञान और मोह - ये पापप्रद हैं ।

**इंदियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठुमग्गम्मि
जावत्तावत्तेहिं पिहियं पावासवच्छिद्दं ॥141॥**

सम्यक्तया मार्ग में रहकर जिसके द्वारा जितना इन्द्रिय, कषाय और संज्ञाओं का निग्रह किया जाता है, उसके उतना पापास्रवों का छिद्र बन्द होता है ।

**जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु
णासवदि सुहं असुहं समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स ॥142॥**

सुख-दुःख में समभावी जिन भिक्षु / मुनि के सभी द्रव्यों में राग, द्वेष, मोह नहीं है; उन्हें शुभ-अशुभ का आस्रव नहीं होता है ।

**जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स
संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥143॥**

वास्तव में जब जिस विरत के योग में पुण्य-पाप नहीं हैं, तब उनके शुभाशुभकृत कर्म का संवर होता है ।

**संवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं
कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं ॥144॥**

संवर और योग से युक्त जो जीव अनेक प्रकार के तपों में प्रवृत्ति करता है, वह नियम से अनेक कर्मों की निर्जरा करता है ।

**जो संवरेण जुतो अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं
मुणिउण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं ॥145॥**

आत्मार्थ का प्रसाधक, संवर से युक्त जो (जीव) वास्तव में आत्मा को जानकर ज्ञान को निश्चलरूप से ध्याता है, वह कर्मरज की निर्जरा करता है ।

**जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो
तस्स सुहासुहडहणो झाणमओ जायदे अगणी ॥146॥**

जिसके राग, द्वेष, मोह तथा योग परिणमन नहीं है, उसके शुभाशुभ को जलाने वाली ध्यानमय अग्नि उत्पन्न होती है ।

**जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा
सो तेण हवदि बंधो पोग्गलकम्ममेण विविहेण ॥147॥**

यदि रागी आत्मा उन शुभ-अशुभ से प्रगट होने वाला भाव करता है तो वह उसके द्वारा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्म से बँधता है ।

**जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो ॥148॥**

ग्रहण योग निमित्तक है; योग मन, वचन, काय से उत्पन्न होता है; बंध भाव निमित्तक है; भाव रति, राग, द्वेष, मोह युक्त है ।

**हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति ॥149॥**

चार प्रकार के हेतु आठ प्रकार के (कर्मों के) कारण कहे गए हैं, उनके भी कारण रागादि हैं, उन (रागादि) के अभाव में (कर्म) नहीं बँधते हैं ।

**हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो ॥150॥**

**कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य
पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं ॥151॥**

हेतु के अभाव में ज्ञानी के नियम से आस्रव का निरोध होता है तथा आस्रवभाव के नहीं होने से कर्म का निरोध हो जाता है । कर्म का अभाव होने पर सर्वज्ञ और सर्वलोकदर्शी होते हुए इन्द्रियरहित अव्याबाध अनन्त सुख को प्राप्त करते हैं ।

**दंसणणाणसमग्गं ज्ञाणं णो अण्णदव्वसंजुतं
जायदि णिज्जरहेदू सहावसहिदस्स साहुस्स ॥152॥**

स्वभाव सहित साधु के दर्शन-ज्ञान से परिपूर्ण और अन्य द्रव्यों से संयुक्त नहीं होने वाला ध्यान, निर्जरा का हेतु होता है ।

**जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो ॥153॥**

जो संवर से सहित, सभी कर्मों की निर्जरा करता हुआ, वेदनीय और आयुष्क से रहित होकर भव को छोड़ता है; इसलिए वह मोक्ष है ।

**जीवसहावं णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं ॥154॥**

जीव का स्वभाव अनन्य-मय, अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन है, तथा उनमें नियत अस्तित्वमय अनिंदित चारित्र कहलाता है ।

**जीवो सहावणियदो अणियदगुणपज्जओध परसमओ
जदि कुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो ॥155॥**

जीव स्वभावनियत होने पर भी यदि अनियत गुण-पर्यायवाला होता है तो वह परसमय है। यदि वह स्वसमय को करता है, तो कर्मबंध से छूट जाता है।

**जो परदव्वम्मि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं
सो सगचरित्तभट्टो परचरियचरो हवदि जीवो ॥156॥**

जो (जीव) राग से परद्रव्य में यदि शुभ-अशुभ भाव करता है, तो वह जीव स्वचारित्र से भ्रष्ट परचारित्र रूप आचरण करने वाला होता है।

**आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण
सो तेण परचरित्तो हवदि ति जिणा परूवेंति ॥157॥**

आत्मा के जिस भाव से पुण्य या पाप का आस्रव होता है, वह उससे परचारित्र वाला होता है - ऐसा 'जिन' प्ररूपित करते हैं।

**सो सव्वसंगमुक्को णणमणो अप्पणं सहावेण
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो ॥158॥**

जो सर्व संगमुक्त और अनन्यमनवाला वर्तता हुआ आत्मा को स्वभाव द्वारा नियतरूप से जानता-देखता है, वह जीव स्वचारित्र आचरता है।

**चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा
दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो ॥159॥**

जो परद्रव्यात्मक भावों से रहित स्वरूपवाला दर्शन-ज्ञान के विकल्प को आत्मा से अविकल्प (अभिन्नरूप) आचरण करता है, वह स्वचारित्र का आचरण करता है ।

**धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं
चेट्ठा तवम्मि चरिया ववहारो मोक्खमग्गो ति ॥160॥**

धर्मादि का श्रद्धान सम्यक्त्व है; अंग-पूर्वगत ज्ञान, ज्ञान है और तप में चेष्टा / प्रवृत्ति चारित्र है, इस प्रकार व्यवहार मोक्षमार्ग है ।

**णिच्छयणयेण भणिदो तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा
ण कुणदि किंचि वि अण्णं ण मुयदि सो मोक्खमग्गो ति ॥161॥**

उन तीन से वास्तव में समाहित होता हुआ जो आत्मा, वास्तव में अन्य कुछ भी करता नहीं है और न छोड़ता है, वह निश्चय नय से मोक्षमार्ग है - ऐसा कहा गया है ।

**जो चरदि णादि पेच्छदि अप्पाणं अप्पणा अणणमयं
सो चारित्तं णाणं दंसणमिदि णिच्छिदो होदि ॥162॥**

जो अनन्यमय आत्मा को आत्मा द्वारा आचरता है, जानता है, देखता है, वह (आत्मा ही) चारित्र है, ज्ञान है, दर्शन है - ऐसा निश्चित है ।

**जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुभवदि
इदि तं जाणदि भविओ अभव्वसत्तो ण सद्दहदि ॥163॥**

‘जिससे सबको जानता और देखता है, उससे वह सौख्य का अनुभव करता है’ – जो ऐसा जानता है वह भव्य है; अभव्य जीव इसका श्रद्धान नहीं करते हैं ।

**दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो ति सेविदव्वाणि
साधूहिं इदं भणिदं तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा ॥164॥**

दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग हैं; अतः वे सेवन करने योग्य हैं, ऐसा साधुओं ने कहा है; परंतु उनसे बंध भी होता है और मोक्ष भी होता है ।

**अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो
हवदि ति दुक्खमोक्खो परसमयरदो हवदि जीवो ॥165॥**

यदि अज्ञान से ज्ञानी ऐसा मानता है कि शुद्ध सम्प्रयोग (शुभभाव) से दुःख-मोक्ष होता है तो वह जीव परसमयरत है ।

**अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभतिसंपण्णो
बंधदि पुण्णं बहुसो ण हु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥166॥**

अरहन्त, सिद्ध, चैत्य (प्रतिमा), प्रवचन (जिनवाणी), मुनिगण, ज्ञान के प्रति भक्तिसम्पन्न जीव बहुत पुण्य बाँधता है; परंतु वास्तव में वह कर्म का क्षय नहीं करता है ।

**जस्स ह्रदयेणुमेत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरो वि ॥167॥**

जिसके हृदय में परद्रव्य के प्रति अणुमात्र भी राग विद्यमान है, वह सर्व आगमधर होने पर भी अपने समय को नहीं जानता है ।

**धरिदुं जस्स ण सक्कं चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं
रोधो तस्स ण विज्जदि सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥168॥**

जो चित्त के भ्रमण से रहित आत्मा को धारण करने में (रखने में) समर्थ नहीं है, उसके शुभाशुभ कर्मों का निरोध नहीं होता है ।

तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य भविय पुणो

सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि ॥169॥

इसलिए निर्वाण का इच्छुक जीव निःसंग और निर्मम होकर सिद्धों की भक्ति करता है, उससे वह निर्वाण को प्राप्त होता है ।

सपदत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुतरोचिस्स दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपउत्तस्स ॥170॥

संयम-तप संयुक्त होने पर भी जिसकी बुद्धि का आकर्षण पदार्थोंसहित तीर्थकर के प्रति है तथा जिसे सूत्र के प्रति रुचि है, उसे निर्वाण दूरतर है ।

अरहंतसिद्धचेदियपवयणभत्तो परेण णियमेण जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि ॥171॥

अरहन्त, सिद्ध, चैत्य, प्रवचन के प्रति भक्तियुक्त वर्तता हुआ परम संयमसहित जो तप-कर्म करता है, वह सुरलोक को प्राप्त होता है ।

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि सो तेण वीदरागो भवियो भवसायरं तरदि ॥172॥

इसलिए मोक्षाभिलाषी सर्वत्र किंचित् भी राग न करे । इससे वह भव्य जीव वीतरागी होकर भवसागर को तिर जाता है ।

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं ॥173॥

प्रवचन की भक्ति से प्रेरित मेरे द्वारा मार्ग-प्रभावना के लिए प्रवचन का सारभूत यह 'पंचास्तिकाय-संग्रह' सूत्र कहा गया है ।

